हिन्दी साहित्य में अछूत समाज की यातनाओं के प्रति गहरे सरोकर की परंपरा है। अपने समय के लोकप्रिय लेखक अध्यापक जहूरबख्श की यह कहानी सबसे पहले मासिक पत्रिका 'चाँद' के अछूत विशेषांक (1927) में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी में एक अछूत परिवार की यंत्रणा का दिल को हिला देनेवाला वर्णन है। कहानी काल्पनिक है, लेकिन इसका आधारबिंदु यह कटु यथार्थ है कि हिन्दू समाज में किस तरह अछूतों का निर्मम शोषण और उत्पीड़न होता आया है। यहाँ तक कि स्त्रियों और बच्चों को भी नहीं बख्शा जाता था। ऐसा ही एक बच्चा मिशनरियों की मदद से शिक्षा प्राप्त कर आगे बढ़ता है और मजिस्ट्रेट बनता है। यह कहानी बतलाती है कि एक बड़े समूह द्वारा हिन्दू धर्म का त्याग कर मुसलमान और ईसाई बनने की पृष्ठभूमि क्या है। कहानी का संदेश यह है कि हमें किसी को ऊँच-नीच नहीं समझना चाहिए और सबके साथ मानवीय व्यवहार करना चाहिए।

अरुणोदय प्रकाशन
ज्ञान के विविध आयामों के प्रकाशक

अरुणोदय प्रकाशन, 4695, 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

ACHHOOT KI AATMAKATHA
Story
by Adhyapak Zahurbakhsh

ISBN : 81-88473-78-2

प्रथम संस्करण

मूल्य : 60/-

अरुणोदय प्रकाशन

फोन : 0091#11#23273167, 23275710
फैक्स : 0091#11#23275710

आर.टेक ऑफसेट प्रिंटर्स द्वारा दिल्ली-110095 में मुद्रित

समाज का अग्निकुण्ड

" A Person can never realise his unity with God, the all, except when unity with the whole nation throbs in every fibre of his frame"

by Yogiver Ram

अछूत की आत्मकथा

मि. टामस भारतीय ईसाई थे बड़े ही हँसमुख, प्रसन्नचित्त, पर रोबीले और तेज़ तर्रार। शरीर गँठा हुआ और रंग गेहुआँ था। वे साहबी ड्रेस में रहना बहुत पसन्द करते थे। उन दिनों वे रामपुर में तहसीलदार थे। उनकी प्रकृति में एक बड़ी ही विचित्रता थी। वे हिन्दुओं से बहुत ज़्यादा नफ़रत करते थे। हिन्दुओं के मुक़द्दमे में वे आवश्यकता से कहीं बहुत अधिक सख्ती से काम लेते थे। उनके अधिकार में जो हिन्दू-कर्मचारी थे, वे भी उनसे सुखी न थे। पर, मुसलमानों के प्रति उनके भाव दूसरे ही प्रकार के थे। जब उनके मामले-मुक़द्दमे होते, तब उनकी वह क्रूरता न जाने कहाँ चली जाती थी! मुसलमान-कर्मचारी—यहाँ तक कि एक अदना मुसलमान चपरासी भी, उनका प्रेम-पात्र था और ईसाई तो उनके जाति-भाई ही ठहरे; उनसे उनकी गहरी छननी तो स्वाभाविक बात थी। टामस साहब के इस दृष्टिकोण की भिन्नता से मैं मन-ही-मन खिन्न रहता था।

मैं टामस साहब का रीडर था। जाति का ठहरा ब्राह्मण, इसलिए जब देखो तब मुझ पर उनकी वक्र-दृष्टि रहती थी। मैं

कितना ही डर कर चलता, कितनी ही सावधानी से काम करता; पर साहब की डाँट-फटकार से न बचता। मेरे साथ एक मुंशी भी काम करता था। वह एक तो लापरवाह था दूसरे साहब के मिजाज का परिचय पा चुका था, इसलिए सदा ही काम में असावधानी कर बैठता था। पर, साहब कभी उसे डाँटते न थे, केवल एक मीठी फटकार से ही उसकी भर्त्सना कर देते थे। उनका यह दुरंग व्यवहार देख मेरा हृदय जल उठता। मैं मन-ही-मन सोचने लगता, मुझ पर ही इनकी यह शनि-दृष्टि क्यों रहती है—मैंने इनका क्या बिगाड़ा है, पर सरकारी नौकरी में अधिकारी के सामने—और जब वह मजिस्ट्रेट भी हो, ज़बान हिलाना, विपत्ति बिसाहना है! लाचार, मैं मन मार कर रह जाता था।

एक बार मेरी पत्नी बीमार पड़ी। उसकी दवा-दारू का प्रबन्ध करने के लिए मुझे छुट्टी की आवश्यकता प्रतीत हुई। मैंने टामस साहब से केवल पाँच दिन की छुट्टी माँगी, पर सहानुभूति दिखलाने के स्थान पर उन्होंने मुझे बुरी तरह झिड़क दिया। एक तो पत्नी बीमार थी, चित्त वैसे ही खिन्न था, दूसरे ऊपर से यह फटकार पड़ी—मारे क्रोध के मेरा सारा शरीर भन्ना उठा, आँखें लाल हो उठीं, हाथों की मुट्ठी बँध गई। पर, साहब के रोबीले चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही क्रोध मन में ही दबा कर रह गया। फिर भी मैंने निश्चय कर लिया कि आज साहब से इस अप्रसन्नता का कारण पूछ कर ही रहूँगा।

अदालत बन्द होते ही मैं टामस साहब के बँगले पर पहुँचा। उस समय वे कुर्सी पर बैठे आनन्द से सिगार पी रहे थे।

मैं उन्हें सलाम कर चुपचाप खड़ा हो गया। साहब धुआँ छोड़ते हुए मुझसे बोले—पण्डित क्या है?

मैंने अत्यन्त ही नम्रता से कहा—हुजूर, अपराध क्षमा हो,

कुछ विनय करना चाहता हूँ।

इस पर टामस साहब कुछ रुखाई से बोले—मैं समझ गया! तुम लोगों को सिवा छुट्टी के और भी किसी वस्तु की इच्छा रहती है? जब देखो तब छुट्टी की पुकार! मैं कहाँ तक छुट्टी बाँटता रहूँ?

मैं—नहीं हुजूर! और ही विनय करना चाहता हूँ। पर, कहते डर लगता है—कहीं आप अप्रसन्न न हो उठें।

साहब—डरने की क्या बात है? कहो!

मैं हुजूर! जब देखता हूँ, तब आपको हिन्दुओं पर अप्रसन्न होते ही देखता हूँ। मैं जैसा कुछ काम करता हूँ—आप उसे भली-भाँति जानते हैं। मैं कभी छुट्टी भी नहीं माँगता। मेरा साथी छोटा मुंशी मुसलमान है, आप उसका भी काम भली-भाँति जानते हैं। मेरी पत्नी बीमार है—बुरी तरह बीमार है। मैं आपका ताबेदार हूँ—आपसे सहानुभूति की—सहायता की आशा रखता हूँ, पर बदले में अपमान और खिन्नता पाता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि हिन्दुओं पर आपकी यह अप्रसन्नता क्यों है, उन्होंने ऐसा कौन-सा पाप किया है।

कहने को तो मैं इतनी बात कह गया, पर मारे भय के मेरे प्राण काँप उठे! मैं उनकी ओर देख तक न सका। नीची दृष्टि करके खड़ा रहा! परन्तु, साहब अप्रसन्न न हुए! यह देख मुझे बड़ा विस्मय हुआ! साहस करके मैंने सिर ऊँचा उठाया! वे उस समय कुछ सोच रहे थे—ललाट पर सिकुड़न पड़ रही थी। साहब एक कश खींच कर बड़ी गम्भीरता से बोले—पण्डित! यह पूछने की बात नहीं है। हिन्दुओं से मुझे बड़ी घृणा है। उन पर दृष्टि

डालते ही मेरा रक्त उबल उठता है। ओह! तुम पूछते हो, हिन्दुओं ने क्या पाप किया है? हिन्दुओं के पापों की भी कोई गिनती है! मैं समझता हूँ, हिन्दुओं के समान पापी क़ौम इस विराट् संसार में दूसरी न होगी! तुम लोग कहा करते हो, ईसाई पापी हैं; दूसरों की ही सम्पत्ति पर उनकी दृष्टि रहती है! मुसलमान पापी हैं—बड़े पापी हैं। हिन्दुओं का जी दुखाया करते हैं। पर पण्डित! बुरा मानने की बात नहीं हैं। मैं कहता हूँ, ईसाई और मुसलमान तुम्हारे बराबर पापी हरगिज़ नहीं है। यह हो सकता है कि वे दूसरे लोगों को सताया करते हों, पर अपनी क़ौम से तो मुहब्बत रखते हैं। अपने भाइयों के सुख-दुख में तो सम्मिलित होते हैं। एक तुम्हारी क़ौम है, जो आपस में प्यार करना जानी ही नहीं—उलटे अपने ही लोगों को सताती है। अपनी ही जाति के दीन दुनियों के गले पर निर्दयता से, क्रूरता से, भोथरी छुरी चलाया करती है। उन्हें आठ-आठ आँसू रोते देख आनन्द मनाती है—हँसती है। ओह! इस घोर पैशाचिकता की—इस घोर क्रूरता की भी कोई सीमा है। ऐसी क्रूर जाति संसार में और भी है! फिर भी तुम पूछते हो कि हिन्दुओं ने क्या पाप किया है? अरे ज़ालिम! जानता है, मैं कौन हूँ? मैं तुम्हारे इसी देश में, तुम्हारी इसी जाति में उत्पन्न हुआ हिन्दू हूँ। मुझे ईसाई किसने बनाया। तुमने और केवल तुमने। फिर भी तुम मुझसे पूछते हो कि हिन्दुओं ने मेरा क्या बिगाड़ा है? तुमने मुझे राम और कृष्ण की गोद से उठा कर ईसा की गोद में फेंक दिया—क्या यह साधारण पाप है? अब तुम मेरे कौन हो, हिन्दू-जाति मेरी कौन होती है? मैं उससे घृणा न करूँगा तो

क्या उनसे करूँगा जो मेरे दुर्दिनों में मेरे सहायक बने और जिन्होंने मुझे पाल-पोस कर, लिखा-पढ़ा कर आदमी बनाया?

मेरे ही सामने यह साहब मेरी जाति को गालियाँ दे रहा है, यह देख मुझे घोर सन्ताप हुआ। बड़ा ही क्रोध आया, पर पराधीन आदमी का स्वाभिमान पेट पर दृष्टि जाते ही काफ़ूर हो जाता है। मैंने उनसे पूछा—हुजूर, आप क्या कह रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आया।

साहब कुछ मुस्करा कर बोले—तुम्हारी समझ में आयेगा ही क्यों? यदि तुम्हारी समझ—तुम्हारी बुद्धि इतनी तीव्र होती, तो फिर मैं ईसाई ही क्यों होता? अच्छा, बैठ जाओ; कब तक खड़े रहोगे?

आज्ञा पाते ही मैं गद्दे पर बैठ गया और मन-ही-मन सोचने लगा—आज इन्हें क्या हो गया है? ऐसी बे-सिर-पैर की बातें तो ये कभी न करते थे। इन्हें ईसाई होना था, हो गये; इसमें मेरा या हिन्दू समाज का क्या दोष?

कुछ ठहर कर साहब ने मुझसे पूछा—क्यों पण्डित, यदि इस बेंच पर कोई भंगी या बसोर आ बैठे, तुम क्या करोगे?

मैंने सहज ही उत्तर दिया—हुजूर! यह भी पूछने की बात है। अव्वल तो मैं उसे यहाँ बैठने ही न दूँगा, और यदि वह बैठ ही जायेगा तो मैं उसकी मरम्मत किये बिना न रहूँगा। भंगी या बसोर जैसी अछूत-जाति को मेरे जैसे कुलीन ब्राह्मण की बराबरी में बैठने का अधिकार ही क्या? समाज में मेरी जो मर्यादा है, वह भंगी-बसारे को क्यों कर प्राप्त हो सकती है? हाँ? उसकी मरम्मत कर मैं घर जाऊँगा और अपनी शुद्धि करूँगा।

साहब—आख़िर तुम इन से इतनी घृणा क्यों करते हो? क्या वे मनुष्य नहीं हैं? क्या उनकी छाती में तुम्हारे जैसा हृदय नहीं है? क्या उन्हें तुम्हारे ही उत्पन्न करने वाले भगवान ने
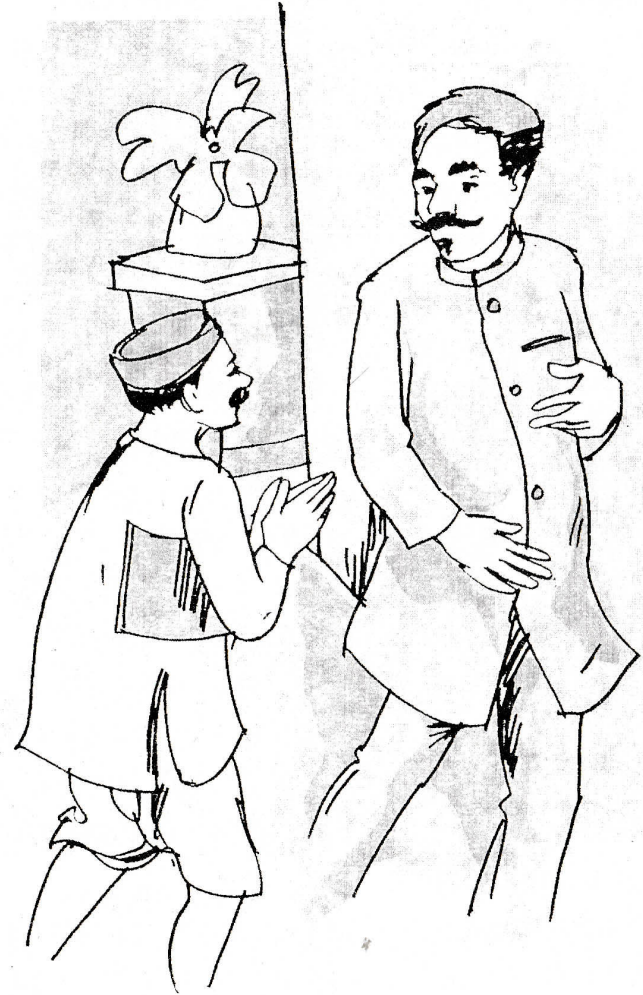
उत्पन्न नहीं किया है?

मैं—हुजूर, इस बात से कौन इनकार कर सकता है कि उन्हें भगवान ने उत्पन्न नहीं किया। भगवान ने तो यह सारी सृष्टि ही उत्पन्न की है, तब भंगी-बसोर कहाँ से आये? उनके भी हृदय होता है, पर भगवान ने उन्हें नीची-जाति में जन्म दिया है, नीची जातियाँ हमारी सेवा करने के लिए ही उत्पन्न की हैं, हमारे धर्मशास्त्र-प्रणेताओं ने उनकी मर्यादा निश्चित कर दी है। उनकी छाया पड़ने मात्र से ही हम अपवित्र हो जाते हैं और हमें पाप लगता है। इसके लिए हमें प्रायश्चित्त करना पड़ता है। उनकी शोभा, उनका कल्याण इसी में है कि वे अपनी मर्यादा के अनुकूल चलते हुए तन-मन से हमारी सेवा करते रहें। दूसरी बात यह भी है कि शूद्रों के आचार-विचार भी अपवित्र होते हैं, तब हम उनसे क्यों सम्पर्क रक्खें—क्यों न घृणा करें?

साहब—अच्छा, थोड़ी देर के लिए तुम्हारी ही बात सही, पर सब शूद्र के आचार-विचार तो अपवित्र होते नहीं? बहुत से शूद्रों के आचार-विचार बड़े ही पवित्र देखे जाते हैं और सभी उच्च जाति के हिन्दुओं के आचार-विचार पवित्र नहीं होते। बहुत से ब्राह्मण तक ऐसे हैं, जो चोरी करते हैं, नित्य झूठ बोलते हैं, शराब पीते और व्यभिचार करते हैं। उनमें ब्राह्मणत्व का कोई चिह्न भी नहीं पाया जाता। अब बताओ, ऐसा भ्रष्ट ब्राह्मण अच्छा, या एक पवित्राचारी शूद्र?

मैं—ब्राह्मण-वंश में जन्म लेने के कारण, एक भ्रष्टाचारी ब्राह्मण भी सौ पवित्राचारी शूद्रों से श्रेष्ठ समझा जायेगा। हुजूर!

बुरा न मानिये, ब्राह्मण ब्राह्मण ही है, शूद्र शूद्र ही है। भला शूद्र भी ब्राह्मण की बराबरी कर सकता है? और मैं शूद्र को ही ब्राह्मण से अच्छा समझ लूँ तो इससे क्या, समाज तो उसे श्रेष्ठ न मानेगा।

साहब—यही तो तुम लोगों की अन्ध-परम्परा है। तुम लोग अपने ही हाथों अपने धर्मशास्त्रों पर हरताल फेरा करते हो। मनुस्मृति में साफ़ कहा गया है कि जो ब्राह्मण ब्राह्मण-धर्म का पालन नहीं करता, वह ब्राह्मण नहीं है। वह चाण्डाल से भी गया बीता है, और चाण्डाल भी पवित्राचारी होने से श्रेष्ठ पद प्राप्त कर सकता है? अजामिल कौन था? शबरी कौन थी? उन्होंने श्रेष्ठ पद कैसे प्राप्त कर लिया? पर? अब तो सभी ओर उल्टी गंगा बह रही है। तुम लोगों से केवल अपने स्वार्थ के लिए, केवल अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने के लिए शूद्रों को पशुओं से भी निकृष्ट समझ लिया है, जैसे वे मनुष्य ही नहीं हैं! फिर भी जब देखो तब धर्मशास्त्रों की दुहाई दिया करते हो। अच्छा यह बतलाओ, यदि तुम्हारे मन्दिर में कोई शूद्र ठाकुर जी के दर्शन करने जाना चाहे तो तुम उसे जाने दोगे या नहीं?

मैं—हुजूर! लोक रूढ़ियों में भी तो कुछ-न-कुछ तात्पर्य होता ही है? शूद्र आरम्भ से ही अस्पृश्य करके समझे गये हैं? अतएव हम लोग उनसे घृणा करते हैं, यह भाव कैसे मिट सकता है? रही उनके मन्दिर में जाने की बात, सो यह तो एक असम्भव बात है। जब वे मन्दिर में जायेंगे तब उनके स्पर्श से हम लोग अपवित्र हो जायेंगे, मन्दिर भी अपवित्र हो जायेगा और इससे ठाकुर जी का घोर अपमान होगा। अछूत लोग स्वयं

अपने मन्दिर बना कर प्रसन्नता से ठाकुर जी के दर्शन कर सकते हैं।

साहब—वाह! क्या कहना! भगवान के दरबार में भी यह छुआछूत का भेदभाव! अछूतों की सृष्टि करने से भगवान अपवित्र नहीं हुए, इससे उनका अपमान नहीं हुआ, परन्तु तुम्हारे मन्दिर में अछूत का चरण पड़ते ही मन्दिर अपवित्र हो जायेगा—भगवान का अपमान हो उठेगा। और क्यों जी, जब अछूत मन्दिर बनायेंगे, उसमें भगवान को स्थापित कर नित्य ही उनका दर्शन करेंगे, तब तो उनके अपमान की सीमा ही न रहेगी। क्या तुम लोग भगवान का ऐसा घोर अपमान, और वह भी नित्य देखा करोगे? इससे तो भगवान के क्रोध की सीमा ही न रहेगी, उनकी कोप-दृष्टि से इस निखिल विश्व में प्रलय की लहरें न उठने लगें! तब तुम कहाँ रहोगे?

साहब की इस बात का मुझे कोई उत्तर न सूझ पड़ा, मैं हतप्रभ-सा हो रहा! साहब फिर बोले—तुम लोग ऐसे ही सोच विचारों के कारण अछूतों पर अत्याचार करते हो, उनकी छाया पड़ने से तुम अपवित्र हो जाते हो, वे दिन-रात तुम्हारी सेवा करते हैं, फिर भी तुम उनसे घृणा करते और उन्हें जली-कटी सुनाते रहते हो। कुत्ता भले ही तुम्हारे बिस्तर पर आ बैठे, पर एक अछूत तुम्हारे मकान की सीढ़ी पर भी पैर नहीं रख सकता, वे तुम्हारे कुएँ से पानी नहीं ले सकते, तुम्हारे मन्दिर की ओर दृष्टि भी नहीं उठा सकते आदि कितने ही अत्याचार उनकी सेवा के पुरस्कार हैं। जानते हो, तुम्हारी इस हृदय-हीनता से उनके दिल पर कितना आघात लगता है और तुम्हारी कितनी

हानि होती है?

साहब—अच्छा सुनो, एक बहुत पुरानी घटना याद हो आई है। किसी छोटे-से गाँव में एक बसोर रहता था। उसका टूटा-फूटा घर गाँव के बिल्कुल बाहर एक कोने में था। क्योंकि बसोर जैसी नीची जाति का आदमी गाँव के अन्दर ज्यादा देर तक ठहर भी नहीं सकता, वहाँ घर बना कर रहना तो एक असम्भव बात है। उसके घर के पास ही जंगल लगा हुआ था, अब तुम जान सकते हो कि जंगल के पास ही रहने से बसोर के जीवन के दिन कैसी भयपद अवस्था में बीतते होंगे। शाम हुई नहीं कि उसके घर के किवाड़ बन्द हो जाते थे। पास ही जंगली पशुओं की हुंकार और चीत्कार-ध्वनि हुआ करती थी। मारे भय के उसका परिवार कभी-कभी जागते-जागते, काँपते-काँपते रात-दिन बिता देता था। इस भारतवर्ष की अछूत जातियाँ नगरों और गाँवों के बाहर, निर्मल वायु में भय की कितनी साँसें लिया करती हैं, कौन सहृदय इस बात का पता लगाता है। वे किस प्रकार अपनी रातें बिताया करती हैं, यह वे ही बतला सकती हैं। अस्तु।

बसोर का परिवार बहुत छोटा था। उसमें केवल तीन आदमी थे, पति-पत्नी और उनका एक आठ-दस वर्ष का बालक। फिर भी उसके दिन बड़ी कठिनाई से कटते थे। उन्हें कभी दोनों समय भर पेट भोजन नसीब न होता था, न कभी अच्छे कपड़े पहनने को मिलते थे। बसोर और उसकी पत्नी पर सारे गाँव की सेवा का भार था। बसोर गाँव में शुभ-कार्यों के अवसर पर बाजे बजाने जाया करता था, उसकी पत्नी दाई का

काम किया करती थी इस सेवा के बदले उन्हें प्रत्येक किसान से, प्रति वर्ष कुछ बँधा हुआ अनाज मिल जाया करता था, और वह भी कितनी ही दीन-प्रार्थनाओं पर—कितने ही बार भटकने पर। परन्तु, इतने पर भी पूरा नाज न मिलता था, दाता उन्हें एक-एक अपराध लगा कर उसमें कुछ-न-कुछ कमी कर ही देते थे। शुभ अवसरों पर उन्हें कभी-कभी फटे-पुराने कपड़े भी देते थे, कोई-कोई दयालु दाता चार-छः पैसे भी दान करने की उदारता दिखला देते थे! फ़ुरसत के समय में बसोर सूप, टोकरी, पंखे, चटाई आदि वस्तुएँ बनाया करता था। इस कार्य से कभी-कभी उसे चार-छः रूखी-सूखी और बासी-तिबासी रोटियों की आमदनी हो जाया करती थी। इस थोड़ी सी आमदनी से वे अछूत दम्पत्ति अपनी गृहस्थी बड़ी कठिनाई, पर शान्ति और सन्तोष से चलाते और अपने दाताओं के लिए आशीर्वाद की प्रार्थना किया करते थे।

एक बार की बात सुनो। गर्मी के दिन थे, गाँव के मालगुजार के बेटे की शादी थी। बसोर को उनके यहाँ बाजा बजाने के लिए जाना पड़ा। गरीब की आशा ठहरी और मालगुजार का भय। सरकार के यहाँ से अच्छी आमदनी होगी, इस आशा से बेचारा उनके द्वार पर दिन भर धूप में बैठा-बैठा बजाता रहा, पर उसकी आशा उसे घातक हो गई, बेचारे को लू लग गई। शाम होते-होते उसे बुखार आ गया। वह घर आते ही चटाई पर आ गिरा। सवेरा हुआ, बसोर मालगुजार के यहाँ न पहुँचा। बस, उनका एक चपरासी साक्षात यमदूत के समान उसके यहाँ आ धमका और गरज कर बोला—"क्यों रे दुष्ट!

तेरा इतना दिमाग! तू अब तक बाजा लेकर न आया! वहाँ कब से तेरी बाट देखी जा रही है!" उस समय भी बसोर को ज़ोर से बुखार चढ़ा हुआ था, मारे दर्द के उसका सिर फटा जा रहा था, आँखें लाल हो रही थीं। उसने बड़ी ही दीनता से चपरासी से कहा—"सरकार! मैं मारे बुख़ार के मरा जा रहा हूँ, नहीं तो मैं अब तक बिना बुलाए ही पहुँच गया होता! मुझमें चलने की भी हिम्मत नहीं है।" गरीब सच भी कहे, तो उसकी कौन मानेगा, दुष्ट ही ठहरा न! बसोर की बात सुनते ही चपरासी के क्रोध का ठिकाना न रहा। बिगड़ कर बोला—"साले, मैं ख़ूब जानता हूँ, तू नम्बर एक का बदमाश है! शराब पी आया होगा और क्या? अब बहाने बनाता है! चलता है कि नहीं?" बसोर कितना ही रोया-गिड़गिड़ाया, उसकी पत्नी ने कितनी ही करुण-प्रार्थनाएँ कीं, पर वह ठहरा मालगुज़ार का चपरासी। दीनों की प्रार्थनाओं से यदि मालगुज़ारों के चपरासियों के हृदय पिघलने लगें तो फिर उनका राज्य ही क्या रहे! मतलब यह कि दम्पति की पुकार व्यर्थ ही गई। बसोर आँखों में आँसू भर कर चपरासी के साथ चला गया। उसने मालगुज़ार को जब कई बार अपना दुखड़ा सुनाया, तब उन्होंने अपने सेवकों को आज्ञा दी—"इस बदमाश को गाँव में किसने बसने दिया? इसे यहाँ से निकाल कर बाहर करो और निकालते-निकालते इतनी मार लगाओ कि यह भी याद करे कि किस से बदमाशी की थी।" अब बसोर क्या करता? जान पर खेल कर शाम तक बाजा बजाता रहा। दियाबत्ती होते-होते लड़खड़ाता हुआ घर लौटा! द्वार पर पहुँचते-पहुँचते उसे चक्कर आ गया और वह बेहोश

होकर गिर पड़ा। फिर उसे होश न आया। आधी रात होते-होते उसकी जीवन-ज्योति बुझ गई! उसकी पवित्र आत्मा अछूत का शरीर त्याग न जाने किस पावन प्रदेश को चली गई! बेचारे की पत्नी विधवा और निराश्रय हो गई, बालक अनाथ हो गया। माँ-बेटे ने जंगल के अंचल में बैठ कर वह काल-रात्रि कैसे व्यतीत की होगी! ओह!

प्रातःकाल हुआ। चिड़ियाँ चूँ-चूँ करने लगीं, ठण्डी-ठण्डी हवा बहने लगी, विश्व ने नवीन जीवन पाया। ऐसे आनन्दमय समय में विधवा बसोरिन ने बिलखता हुआ हृदय लेकर घर का द्वार खोला। इस समय उसके सामने केवल पति के शव को ठिकाने लगाने का प्रश्न था! पास में पैसा नहीं है, सारा गाँव उसे अपवित्र, अस्पृश्य समझता है, उसके पति का शव कैसे ठिकाने लगेगा? ओह! अछूत का जीवन पथ कैसा कष्टकाकीर्ण है! मरने पर भी उसका ठिकाना नहीं है! उसके लिए मरण जीवन से भी कठिन है! उस गाँव के दूसरे कोने में एक और बसोर रहता था। विधवा बसोरिन पति के शव के पास अपने अज्ञान भोले-भाले बच्चे को बिठा कर उसके पास गई। वह उससे बोला—बहिन, तुम्हारे ही जैसा दुखिया और अभागा मैं भी हूँ। मैं अकेला आदमी क्या करूँ? तुम मालगुज़ार के पास चली जाओ। अच्छा, मैं भी चलता हूँ। शायद तुम्हारे दुख पर उन्हें दया आवे और वे कुछ बन्दोबस्त कर देवें।

बसोरिन उस बसोर के साथ मालगुज़ार के यहाँ पहुँची। उस समय मालगुज़ार दालान में बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसे देखते ही बसोरिन चीख मार कर रो पड़ी।

बोली—सरकार, मैं लुट गई! विधना ने मेरा सुहाग छीन लिया! मालगुज़ार था पूरा पशु, उसके हृदय में दया-मया का एक कण भी न था। बिगड़ कर बोला—तू लुट गई तो मैं क्या करूँ? मैं तो तेरा सुहाग लौटा नहीं सकता। राँड़ सबेर-सबेरे यहाँ अपशकुन करने आ पहुँची! तब बसोर ने हाथ जोड़ कर उससे प्रार्थना की—सरकार! आप सच कहते हैं। कोई किसी का सुहाग नहीं लौटा सकता। जिसके भाग्य में जो बदा होता है, उसे कौन मेट सकता है? अब आप दया करके ऐसा प्रबन्ध कर दीजिए,

जिससे उस बेचारे की लाश ठिकाने लग जाये। इस पर मालगुज़ार और भी तीखा होकर बोला—अच्छा, तो क्या मैंने तुम्हारे बाप का कर्ज़ खाया है। मेरे किये कुछ हो सकेगा? जाओ, अपनी राह लो! बेचारा बसोर दूसरे के लिए हाथ जोड़ कातर स्वर से, उस नराधम से कहने लगा—नहीं सरकार, ऐसा न कहिए! आप हमारे माई-बाप हैं। हम आपके राज्य में रहते हैं। आप ही हमारा दुख न सुनेंगे, तो कौन सुनेगा? आप ही हमारी सहायता न करेंगे, तो कौन करेगा? परन्तु, उस पाषाण-हृदय पर इस कातरोक्ति का कोई प्रभाव न पड़ा। वह गरज कर बोला—एक बार तो कह दिया, मेरे किए कुछ न हो सकेगा! सीधे-सीधे जाते हो या नहीं? परन्तु, बसोरिन न मानी, वह विलाप करते-करते लोट गई और मालगुज़ार से बोली—पिता! मैं आपकी बेटी हूँ, मुझ पर दया कीजिए! अब तो मालगुज़ार का क्रोध और भी भड़क उठा। कहने लगा—हाय हाय! सबेरे-सबेरे

ऐसा अपशकुन! और ऊपर से इतनी चिल्ल-पों! इन बदमाशों ने तो मेरी जान ही खा डाली! अब तो इनकी शरारतें नहीं सही जातीं। क्या इस गाँव में अकेला मैं ही रहता हूँ, जो तुम सीधे मेरे यहाँ आ पहुँचे? कोई है, इन सालों को अभी मार कर हटा दो!

यह हाल देखा तो बेचारे दोनों वहाँ से आगे चले। गाँव में जो और दो-चार भले आदमी समझे जाते थे, वे उन सबके यहाँ पहुँचे। किसी ने आँखें दिखलाईं, किसी ने तिरस्कार किया और किसी ने गालियाँ सुनाईं! पर, अपने को श्रेष्ठ समझने वाले उन भले आदमियों में से एक भी ऐसा न निकला, जो सहायता न करता तो न करता उस दुखिया से सहानुभूति से भरी दो मीठी बातें तो करता! यह है तुम्हारी पवित्र हिन्दू-समाज की उच्चतर करतूत, जो अपने ही लोगों के साथ ऐसा घृणित व्यवहार करती है! उस बसोर ने जीवन भर उस गाँव की, हिन्दू-समाज की सेवा की थी, उसी की सेवा करते-करते उसने अपने आपको बलिदान कर दिया था! क्या हिन्दू-समाज का यह कर्त्तव्य न था कि अपने एक सच्चे सेवक की मृत्यु पर वह दो ठण्डी साँसें लेता, आदर से उसके शव की अन्तिम क्रिया करता और उसकी विधवा पत्नी को स्नेह से सान्त्वना देता? पर नहीं, हिन्दू-समाज इसी कर्त्तव्यच्युति को कर्त्तव्य-पालन समझता है और इसी में आनन्द मानता है। यह भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जहाँ मनुष्य का आसन पशु से भी निकृष्ट है और जहाँ का हिन्दू-समाज को घृणित समझ कर उसकी उपेक्षा ही नहीं करता, बल्कि उसके जीवन में उसे रुलाता और मरने पर भी

लिए अपना अपमान कराने वाला, वह नीच बसोर श्रेष्ठ था या अपने को श्रेष्ठ समझने वाले वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य श्रेष्ठ थे, जो उसका दुख देखकर हँसते और उसका अपमान करते थे! ख़ैर।

अब बेचारी बसोरिन को चारों ओर अँधेरा दीखने लगा। पति का शव कैसे श्मशान में पहुँचाया जायगा, कैसे वह जलाया जायगा—यह सोचती-सोचती वह व्याकुल हो उठी और उस बसोर से बोली—भैया, अब मैं क्या करूँ? क्या इनकी यह मिट्टी यों ही पड़ी रहेगी? बसोर ने कहा—बहिन, घबराने से क्या होगा? भगवान ही हम दुखियों की लाज रखने वाले हैं! उन्हें आप हमारी चिन्ता होगी। मैं घर जाता हूँ, जितना ईंधन था, उसने निकाल कर बाहर रख दिया। बसोर भी दो-तीन बार करके अपने घर का कुल ईंधन उठा लाया, पर वह इतना नहीं था जिससे मुर्दा फुँक जाता। तब बसोरिन ने अपने घर का आधा छप्पर भी निकलवा डाला। इसके बाद दोनों ने सब काठ-किवाड़ ढो-ढोकर मरघट में पहुँचाया। फिर दोनों जैसे-तैसे शव को श्मशान में ले गए और किसी प्रकार उसे ठिकाने लगाया! पण्डित, ज़रा सोचो तो, उस दुखिया विधवा पर उस समय कैसी बीत रही होगी! एक तो उसका पति जाता रहा, दूसरे गाँव वालों ने सहायता के बदले उसका अपमान किया, तीसरे शव की अन्तिम क्रिया के लिए उसे इतना परिश्रम—इतना आयोजन करना पड़ा—यहाँ तक कि उसका घर भी ठिकाने लग गया, चौथे उसका छोटा-सा बालक भूखा-प्यासा उसके पीछे बिलबिलाता फिरता रहा होगा! ओह! वह दृश्य कितना ममघातक रहा होगा! मनुष्य पर ऐसा दुख पड़े और मनुष्य अपनी श्रेष्ठता के थोथे अभिमान में फूल कर ऐसा करुणार्द्र दृश्य देखता रहे! कैसी पैशाचिकता है, कितनी हृदय-हीनता है! यही तुम्हारे हिन्दू समाज की श्रेष्ठता है? क्यों न?

इतना कहते-कहते साहब चुप हो गए! उनकी आँखें सजल हो आईं! दो बिन्दु कपोलों पर ढलक आए! उनके मुखड़े पर ऐसी कोमलता—ऐसी विषादमयी छाया मैंने कभी न देखी थी! मैं एकटक उनकी ओर देखने लगा। कुछेक क्षण चुप रह कर साहब पुनः बोले—पण्डित, अपनी समाज की यश-गाथा और सुनोगे? अच्छा सुनो, यह करुण-कथा यहीं समाप्त नहीं हो जाती। अभी तुम और भी करुणाजनक दृश्य देखोगे। हाँ, तो गाँव वालों की इस क्रूरता से वह दयालु और दीन बसोर विशेष मर्माहत हुआ। वह दूसरे दिन बसोरिन के पास आकर बोला—बहिन! अब इस गाँव में रहने का धर्म नहीं रहा। गाँव वालों की सज्जनता तुम देख ही चुकीं। यहाँ अपनी जाति का कोई है नहीं। कल को मर जाऊँगा तो मेरी लाश कौवे-कुत्ते चीथेंगे, सो अब तो मैं यहाँ न रहूँगा। आज ही यहाँ से दूसरी जगह जाऊँगा। तुम भी यहाँ न रहना! इससे तो जगंल में रह कर भूखा मर जाना अच्छा। वहाँ हमें देख कर कोई नाक-भौं तो न सिकोड़ेगा, कोई हमें बिना अपराध के गालियाँ तो न देगा! अपने सुहृद की यह आकुल वाणी सुन बसोरिन बिलख-बिलखकर रोने लगी और बोली—भैया! जाओ, ऐसे भले मानुसों में हम लोगों का न रहना ही अच्छा! मैं बच्चे को लेकर कहाँ जाऊँगी! मेरी लाज तो भगवान के हाथ है। बसोर की आँखें भी भर आईं, बेचारा दुखी होकर बोला—बहिन! मैं ही तुम्हें अपने साथ ले चलता, पर अभी यही ठीक नहीं है कि मैं कहाँ का मारा कहाँ जाऊँगा। यदि कहीं मेरे रहने-सहने का सिलसिला जम गया तो मैं तुम्हें भी वहीं बुला लूँगा। इस प्रकार

बसोर उसे समझा-बुझा कर चला गया, फिर उसे किसी ने गाँव में न देखा। बहुत दिन बात पला चला कि वह सात समुद्र पार फ़िज़ी में पहुँच गया है।

अब बसोरिन और उसके बेटे का हाल सुनो। पति के मरने से वह बड़ी ही दुखिया हो गई थी, अब उसका पुत्र ही उसका एक मात्र आधार था! वह उसकी आँखों का तारा था। उसकी
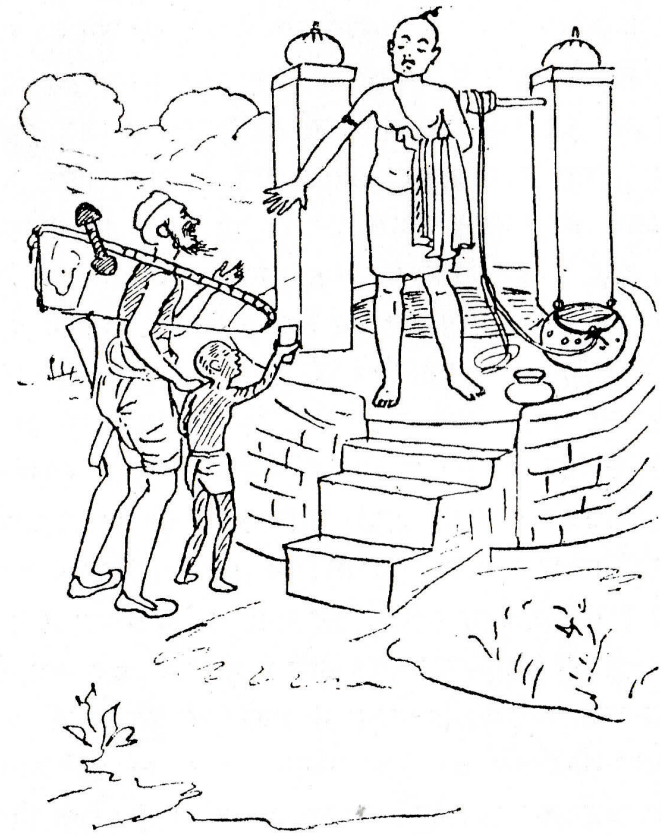
आशाओं का केन्द्र, उसके सुख का अवलम्ब केवल वही पुत्र था। पति के मरने से उसकी आमदनी घट गई थी तो भी उसकी बड़ी अभिलाषा रहती थी कि मेरा लाल दुखी न होने पावे। वह आप न खाकर पुत्र को खिलाती थी। वह अपने बेटे पर जान देती थी। उसके बेटे का नाम था दमरू। माता के लाड़-प्यार से दमरू कुछ स्वछन्द हो गया था। रोटी खाई नहीं कि वह बाहर चला गया। माता भी उससे कुछ न कहती थी।

मालगुज़ार के घर के पिछवाड़े बेर के कई वृक्ष लगे हुए थे। मीठे-मीठे बेर खाने के लालच से दमरू वहाँ बहुत जाता था। मालगुज़ार का एक सात-आठ वर्ष का बालक भी बेर बीनने आया करता था। बालक अबोध होते हैं, वे छुआछूत का भेद-भाव नहीं समझते। दमरू वृक्ष पर चढ़ जाता और डालियाँ हिला देता, पड़ापड़ बेर बरसने लगते। मालगुज़ार का बालक बेर बीनता, फिर दोनों मिल बाँट कर खाते। धीरे-धीरे दोनों में बड़ा प्रेम हो गया। दोनों एक-दूसरे की तलाश में रहते और जब मिलते तो बहुत प्रसन्न होते। एक दिन मालगुज़ार ने दोनों मित्रों को देख लिया। मालगुज़ार साहब को बड़ा अफसोस हुआ, साथ ही क्रोध भी आया। उसने अपने बेटे को दो चपतें जमाईं और उससे कहा—खबरदार! जो अब इस नीच के साथ रहा। दमरू अछूत था इसलिए बच गया, पर मालगुज़ार ने उसे भी सचेत कर दिया—ख़बरदार! आगे से इधर न आना नहीं तो चमड़ी उधड़वा लूँगा। मालगुज़ार ने ताकीद तो पूरी कर दी, पर बालक रसीले बेरों का स्वाद चखने का लालच नहीं त्याग सकते, चाहे तुम उन्हें रोको, धमकाओ, चाहे मारो। दोनों मित्र

फिर भी मिलते रहे।

गाँव में एक छोटा सा मन्दिर भी था, जिसमें कभी-कभी भजन-कीर्तन हुआ करता था। एक दिन मालगुज़ार के लड़के ने दमरू से कहा—आज मन्दिर में खूब जलसा होगा, पूजा होगी और प्रसाद में पेड़े बँटेंगे, तुम भी मेरे साथ चलो। पेड़े का नाम सुनते ही दमरू नाच उठा। वह बेचारा नहीं जानता था कि मेरे जाने से मन्दिर अपवित्र हो जायेगा और मुझ जैसे अपवित्र जीव के भाग्य में भगवान का प्रसाद पाना लिखा ही नहीं है। ताली पीटता हुआ वह मन्दिर में जा पहुँचा! उसे देखते ही मन्दिर में हलचल मच गई। नीच है, बसोर है, कहते हुए सब लोग अपनी पवित्रता की रक्षा करने के लिए व्याकुल हो उठे! लोगों की वह हलचल देख दमरू भौचक-सा खड़ा रह गया, बेचारा संकट में पड़ गया। लोगों की हलचल देखते ही पुजारी जी घबरा उठे और ज्योंही दमरू पर उनकी दृष्टि पड़ी, त्योंही वे अपना आपा भूल गए, मारे क्रोध के बौखला उठे, उनके मस्तिष्क से
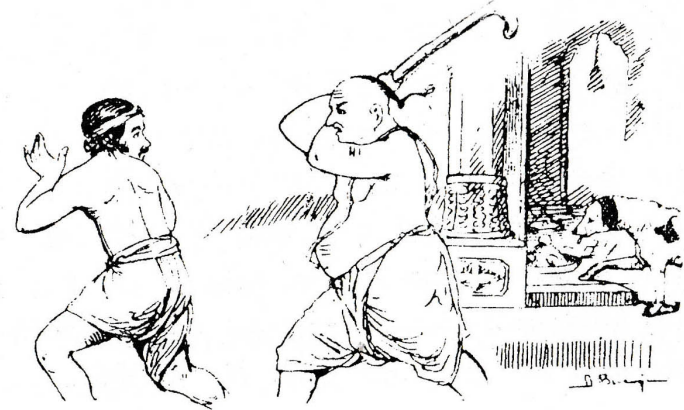
पवित्रता-अपवित्रता के विचार जाते रहे। हे भगवान! कलयुग में इनके हौसले इस तरह बढ़ रहे हैं, हम लोगों की लाज तुम्हारे ही हाथ है। यह कहते हुए वे दमरू पर टूट पड़े! उन्होंने दमरू को इस तरह मारा कि कोई पशु को भी न मारता होगा। जिस भगवान के दरबार में प्रसाद पाने की आशा से गया हुआ दमरू पिटते-पिटते मुँह के बल गिर पडा! हिन्दू लोग अहिंसा की बड़ी दुहाई दिया करते हैं। छोटे-छोटे कीड़ों पर अवश्य दया कर सकते हैं, पर उनके हृदय में—विशाल और करुणार्द्र हृदय में साक्षात् मनुष्य-शरीर धारी अछूतों के लिए दया का एक भी कण शेष नहीं है, और वह केवल इस कारण कि अछूत, अछूत हैं--अपवित्र हैं, उनके स्पर्श-मात्र से हिन्दुओं की धर्म-नौका अधर्म के तूफ़ान में जा पड़ती है। ख़ैर!

प्रसाद के बदले मार खाकर दमरू रोता कराहता घर पहुँचा। माता अपने लाल की वह दशा देख अस्थिर हो गई, उसने दमरू को गोद में लेकर बड़े स्नेह से पूछा— बेटा, क्या हुआ? बिलखते हुए दमरू ने उसे सब हाल सुना दिया! सुन कर माता की आँखों से आँसू बहने लगे। उसने दमरू का मुँह चूम कर कहा—बेटा, तुम वहाँ क्यों गए थे? वहाँ तुम्हें न जाना चाहिए। दमरू बोला—माँ! क्यों न जाना चाहिए? वहाँ तो सभी जाते और ठाकुर जी के दर्शन करते हैं। तुम रोती क्यों हो? माता ने उत्तर दिया—बेटा, वे जा सकते हैं, पर हम नहीं जा सकते, क्योंकि हम अछूत हैं। दमरू माता की बात न समझ सका, बड़े आग्रह से बोला—माँ, अछूत किसे कहते हैं? हममें-उनमें क्या अन्तर है? मुझे तो कोई अन्तर नहीं जान पड़ता, केवल

ही ख़राब कपड़े पहने हुए थे। माता इस प्रश्न का क्या उत्तर देती? उसने केवल रो दिया। तब दमरू बोला--अच्छा माँ, तुम रोओ नहीं, अब मैं कभी मन्दिर में न जाऊँगा।

दमरू मन्दिर में गया था, इस अपराध पर पुजारी जी उसे कठोर दण्ड दे चुके थे, पर गाँव वाले इतने से ही शान्त न हुए। उन्होंने बड़ा बावेला मचाया। मालगुज़ार से शिकायत की गई। तब मालगुज़ार ने बसोरिन को बुलवाया! सभी लोग मारे क्रोध के पागल हो रहे थे। कुशल इतनी ही थी कि वह अछूत थी, नहीं तो वे न जाने क्या कर डालते। बेचारे उसे भाँति-भाँति की

गालियाँ सुना कर ही रह गए। बसोरिन ने उनसे हाथ जोड़ कर विनती की—महाराज, वह अबोध बालक है, क्या जाने कि उसे मन्दिर में जाना चाहिए या नहीं! मैंने तो उससे कह नहीं दिया था। बच्चे का यह अपराध क्षमा कर दीजिए। आगे से ऐसा न होगा। उन लोगों से छुट्टी पाकर उसने दमरू से कहा—देखो बेटा, अब कभी न जाना। घर ही खेला करो। यदि कहीं जाओगे, और कोई उलाहना देगा तो मैं भी तुम्हें बुरी तरह पीटूँगी।

बेचारा दमरू डर गया। उस दिन से वह कहीं न आता जाता था। माँ भी उस की विशेष देख-रेख रखती थी, परन्तु बच्चे बन्धन में छटपटाने लगते हैं। कुछ दिन बाद ही दमरू की इच्छा यहाँ-वहाँ घूमने-फिरने की होने लगी। एक दिन वह अवसर पा कर निकल खड़ा हुआ। खेलते-खेलते दमरू को प्यास लगी। उस समय कुएँ पर दो-चार स्त्रियाँ पानी भर रही थीं। पानी पीने की आशा से दमरू कुएँ पर जा पहुँचा। उसने एक स्त्री से पानी माँगा परन्तु, वे उसे पानी के बदले गालियाँ देने लगीं। उन्होंने अपने-अपने घड़े पटक दिए। यह देख दमरू भौचक-सा रह गया। पहले के समान ही फिर कोई आफ़त न आ जावे—यह सोच बेचारे के प्राण काँप उठे। वह भाग कर घर में जा छिपा।

इस पर गाँव में पहले से भी ज़्यादा कोलाहल मचा। शीघ्र ही मालगुज़ार के यहाँ बसोरिन की बुलाहट हुई। वह गरज कर बसोरिन से बोला—अरी औरत! तू बहुत बदमाश हो गई है। तू ने ही लड़के को सिर पर चढ़ा रखा है। आज उसने कुआँ
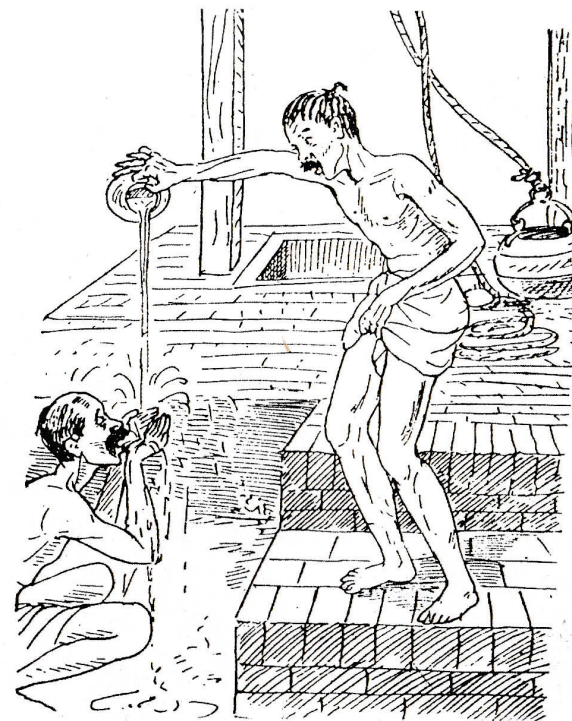
अपवित्र कर डाला! अब लोग कहाँ पानी पिएँगे? बसोरिन ने यह सुना तो बेचारी के प्राण सूख गए। हाथ जोड़ कर बोली—माई-बाप! मैं तो हमेशा उसे आँखों के सामने रखती हूँ और डाँटा करती हूँ। आज वह नज़र बचा कर निकल गया। मालगुज़ार उसी प्रकार बिगड़ कर बोला—मैं तुझे ख़ूब जानता हूँ, मुझी से बात बनाती है। तू यों न मानेगी, यह कह कर उसने अपने एक चपरासी को आज्ञा दी—यों नहीं मानती, ज़रा इसे ठीक तो कर दो। कुछ हर्ज़ नहीं, पीछे स्नान कर डालना। यह सुनते ही चपरासी उस अबला पर टूट पड़ा। बेचारी कितनी

रोई-गिड़गिड़ाई, पर उसके करुण-क्रन्दन से किसी का हृदय न पसीजा। कहो पण्डित! यह तुम्हारी आदर्श-समाज के अहिंसा-व्रत का कैसा सुन्दर उदाहरण है। हिन्दू-पुरुषों की वीरता केवल अपने ही लोगों को सताने में—अबलाओं को आठ-आठ आँसू रुलाने में ही रह गई है। ख़ैर!

बसोरिन रोती-बिलखती घर पहुँची। उसने विकराल रूप धारण कर बालक से पूछा—तू कुएँ पर क्यों गया था? मारे डर के बेचारा थर-थर काँपने लगा, आँखों में आँसू भर कर बोला—माँ, प्यास लगी थी। सभी तो जाते हैं, इसी से मैं भी चला गया। वहाँ दो-तीन लड़के और थे। उनसे तो कोई कुछ नहीं कहता। परन्तु, माँ ने बच्चे के इस भोलेपन पर कुछ ध्यान न दिया। अपमान और क्रोध से उसका हृदय जल ही रहा था, बच्चे का उत्तर सुनते ही वह अपने को न रोक सकी, उसने बच्चे को पीटना शुरू कर दिया। बच्चा—नहीं माँ, नहीं माँ कहता उसके पैरों से लिपट गया, पर उसका हाथ न रुका। अन्त में बच्चा भूमि पर गिर पड़ा। रोते-रोते उसकी हिचकी बँध गई। बच्चे की यह दशा देख, माता का हृदय भीतर ही भीतर मथा जाने लगा। उसने बच्चे को गोद में उठा लिया और वह उसे हृदय से लगाकर आप भी फूट-फूट कर रोने लगी। माता और पुत्र न जाने कब तक रोते रहे। उस दिन बसोरिन के यहाँ चूल्हा न जला। माता और पुत्र दोनों ही भूखे पड़े रहे। तुम्हारे हिन्दू-समाज के इन निर्मम घोर अत्याचारों से कितने दीन-दुखियों के यहाँ करुण-क्रन्दन होता है, कितने भूखे-प्यासे तड़प-तड़प कर रात-दिन बिता देते हैं—इसका पता कौन लगाने जाता है! ओह, इन

दुखियों की सर्द आहें तुम्हें कब तक सुख की नींद सोने देंगी, वह समय दूर नहीं है, जब तुम्हें अपनी इस पैशाचिकता का प्रायश्चित्त रक्त के आँसू बहा कर करना पड़ेगा।

उस दिन से बसोरिन विशेष चिन्ताकुल रहने लगी। वह सदैव यही सोचा करती थी—मैं इन धर्म-ध्वजियों के बीच में रहती हूँ, जिनका धर्म मेरी छायामात्र से मृत्यु की साँसें लेने लगता है। यहाँ न मेरी जाति का ही कोई आदमी है, न कोई सहायक ही है; तब ऐसे लोगों के बीच में रहने से मेरा

जीवन-बेड़ा कैसे पार होगा? अबोध बच्चा अनजाने में ज़रा सा ही अपराध कर देता है तो ये लोग जान लेने पर उतारू हो जाते हैं। उससे दो बार अपराध हो चुका है, अब कहीं फिर वह कोई अपराध कर बैठा, तो ये लोग न जाने क्या कर बैठेंगे! हे भगवान्! तुम्हीं मेरे बच्चे पर दया दृष्टि करो। अन्त में भगवान ने उसकी कातर वाणी सुन ली। कुछ ही दिन पीछे गाँव में दो मिशनरी मेमें आईं। उन्होंने गाँव की स्त्रियों को भगवान ईसा का सन्देश सुनाया। बसोरिन ने भी उनका उपदेश सुना। उनकी दयालु प्रकृति से बसोरिन को बड़ी आशा हुई। उसने मेमों को अपना सब दुखड़ा सुनाया। दयालु मेमों की आँखें भर आईं। उन्होंने बसोरिन से कहा—मसीह दुखियों का ही दुख दूर करने को संसार में आया था। तुम लोग हमारे साथ चलो। मसीह तुम पर दया करेगा।

बसोरिन हर्षोत्फुल्ल हो बेटे को ले, मेमों के साथ चली गई। अब उसके जीवन की धारा दूसरी ही दिशा में बहने लगी। उसने नए संसार में प्रवेश किया, जहाँ न कोई बड़ा था न छोटा; न ऊँच था न नीच—सभी बराबर थे। सभी को सबके सुख-दुख की चिन्ता लगी रहती थी। यहाँ बसोरिन को कोई खरी-खोटी सुनाने वाला न था, सभी उससे आत्मीय जैसा व्यवहार करते थे। अब वह अच्छे कपड़े पहिनती थी, अच्छे भोजन पाती थी। यहाँ सभी उसके प्यारे बेटे पर प्यार करते थे, कोई उससे घृणा न करता था, वह भी अच्छे कपड़े पहिनता और अच्छा भोजन पाता था। खेलने को उसे सुन्दर खिलौने मिलते थे। वह खुले मैदान में, निर्मल वायु में स्वाधीनतापूर्वक चिड़ियों की नाईं

फुदकता फिरता था। चाहे जिसे छू लेता था, चाहे जिससे लिपट जाता था। क्या बँगले में, क्या गिरजे में जहाँ, चाहता वहीं चला जाता था। पर, इससे न तो कोई आदमी ही अपवित्र होता था और न कोई मकान ही। सचमुच ही उन दुखियों—माँ-बेटे पर मसीह ने दया की। अच्छा पण्डित, बतलाओ इन दो आदमियों के ईसाई हो जाने से तुम्हारी क्या हानि हुई?

मैंने कहा—हुज़ूर, उनसे किसी ने ईसाई होने को तो कहा नहीं था। वे अपनी इच्छा से ईसाई हो गए तो कोई क्या करे? इससे मेरी या हिन्दू-समाज की हानि ही क्या है?

इस पर साहब बड़े तपाक से बोले—यह सच है, कि उनसे किसी ने ईसाई हो जाने को नहीं कहा था, पर तुम्हारे हिन्दू-समाज ने उनसे ऐसा निर्मम व्यवहार किया था कि उनके सामने, सिवा ईसाई या मुसलमान हो जाने के, जीवन-रक्षा के लिए अन्य उपाय ही न था। यदि अछूतों के साथ तुम्हारी यही हरकतें रहीं तो वह दिन दूर नहीं है, जब सब अछूत हिन्दू-धर्म की शरण त्याग, अन्य धर्मों के आश्रय में जा बसेंगे। इससे हिन्दू-समाज में बड़ा विघटन उत्पन्न हो जायेगा। क्या तुम्हारी ही स्त्रियाँ दाई का कार्य करेंगी? क्या तुम्हीं धोबी का कार्य करोगे? क्या चमारों का सब कार्य तुम्हीं कर डालोगे?* अभी वे तुम्हारे साथ हैं, इसलिए वे तुम्हें बुरे लगते हैं। जब वे तुमसे दूर हो जायँगे तब तुम्हीं उनके लिए आठ-आठ आँसू रोओगे, और जब वे तुमसे अलग हो जायँगे तब से ही तुम्हारे शत्रु—घातक शत्रु बन बैठेंगे। केवल अपनी नादानी से—अपनी कुलीनता के झूठे पाखण्ड में आकर तुम अपना इतना भारी अंश दूर किए देते

हो। सोचो, सात करोड़ मनुष्यों का बल और सहारा कितना होता है! यदि तुम उनके साथ प्रेमपूर्ण और मनुष्यता का व्यवहार करोगे तो वे तुम्हारे पसीने के बदले अपना ख़ून बहाने को तैयार रहेंगे। सोचो, ऐसे भारी बल को ज़बरदस्ती त्याग देने से तुम कितने निर्बल हो जाओगे! अच्छा पण्डित, एक बात और बताओ! वही ईसाई हुआ दमरू बसोर तुम्हारी बराबरी में आ बैठे, तो तुम उससे घृणा करोगे या नहीं?

मैंने उत्तर दिया—मैं क्यों उससे घृणा करूँगा? कोई भी तो ईसाइयों से घृणा नहीं करता।
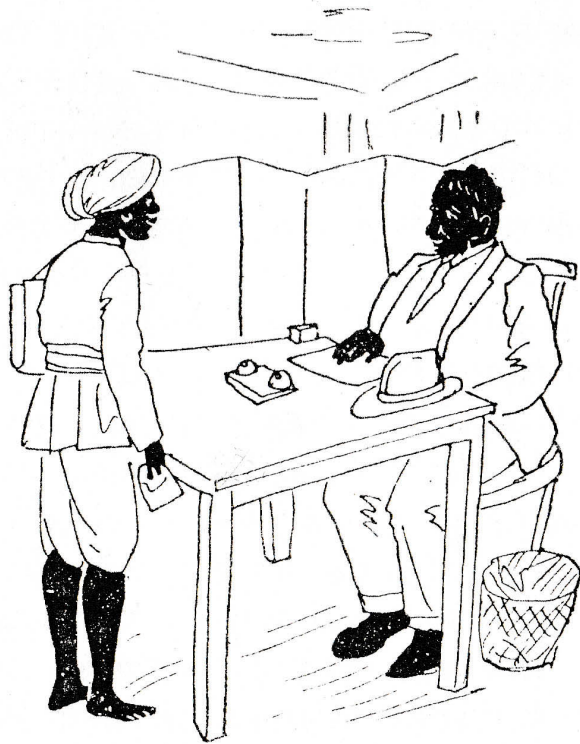
साहब हँस कर बोले—बलिहारी है तुम लोगों की बुद्धि की! पहले उससे घृणा करते थे, क्यों? क्योंकि तब वह हिन्दू था और तुम्हारे ठाकुर जी को श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाता था। और अब उससे घृणा नहीं करोगे क्योंकि अब वह हिन्दू नहीं है; और तुम्हारे ठाकुर जी को घृणा की दृष्टि से देखता है! राम-भक्त के स्पर्श से तुम्हारा धर्म डगमगाने लगता है और राम के विरोधी के चरण चूमने पर भी तुम्हारा धर्म पवित्र और अचल रहता है! कैसी मूर्खता है! ओह, तुम लोग आँखें रहते हुए भी अन्धे हो रहे हो! पण्डित, महात्मा ईसा की शीतल छाया में दमरू की यथेष्ट उन्नति हुई और आज वह टामस नाम लेकर, तहसीलदार के रूप में तुम्हारा स्वामी बना बैठा है! जिस दमरू को देख कर एक दिन हिन्दू-समाज का खून ठण्डा पड़ जाता था, आज उसी दमरू के सामने बड़े-बड़े धर्म-धुरीण हाथ बाँधे खड़े रहते हैं, जिन में से एक तुम हो। बोलो, अब भी अछूतों से घृणा करोगे?

यह सुनते ही मैं सन्नाटे में आ गया! पहले तो मुझे साहब की बात दिल्लगी मालूम हुई, पर शीघ्र ही मेरी समझ में सब बातें आ गईं। मेरी आँखों के सामने से एक परदा सा हट गया। आज मुझे मालूम हुआ कि हम अछूतों पर अत्याचार क्यों कर रहे हैं! मैंने उसी समय साहब के सामने प्रतिज्ञा की—अछूत मेरे भाई हैं। मैं उनसे कभी घृणा न करूँगा, उनसे प्यार करूँगा, उनके सुख-दुख में सम्मिलित होना अपना कर्त्तव्य समझूँगा और अपने अन्य भाइयों को भी यह कर्त्तव्य पालन करने के लिए विवश करूँगा।

●●●